1. मौर्य प्रशासन –

भूमिका– "भारतीय इतिहास में सर्वप्रथम एक राट साम्राज्य की अवधारणा को यथार्थ रूप देने वाला लौह पुरूष एवं युग प्रवर्तक चक्रवती नरेश चन्द्रगुप्त मौर्य मात्र विजिगिषु शाासक ही नहीं था परन्तु एक कुशल शासन संगठन कर्ता भी था। उसके नेतृत्व में जिस शासन व्यवस्था की नींव डाली गयी, वह वरवर्ती शासनतंत्र के लिए असी प्रकार आदर्श बनी, जैसे पारसिक शासन तंत्र का पाश्चात्य एवं पौर्वात्य देशों में अनुसरन किया गया।

सत्ता का अत्यधिक केन्द्रीकरण विकतिस अधिकारीतंत्र उचित न्यायव्यवस्था, नर्गरशासन, कृषि शिनय उधोग संचार, वाणिज्य व्यापार आदि की वृद्धि के लिए उपाय आदि उस प्रशासन की मुख्य विशेषतायें थी। इस प्रशासन की सुक्ति हेतु चन्द्रगुप्त के पास कम से कम दो प्ररणास्त्रोत थे। (1) प्रथम भारतीय राजशास्त्र का मानक अर्थशास्त्र। (2) दूसरा विदेशी शासन प्रणाली। (मुख्तः इरानी इरानी व यूनानी) कौटलीय अर्थशास़ के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रशासन के विषय सूचना, मेगस्थनीज की इंडिका व रूद्रदामन के गिससन शिलालेख से भी मिलती है।

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन प्रबंध का मूल उद्‌देश्य लोकहित था। राज्य को स्वंय अपने आप में साध्य नहीं समझा जाता था। तत्कालीन मापदण्ड के अनुसार चन्द्रगुप्त का शासन प्रबंध एक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को चरितार्थ करता है।

यद्यपि इसका शासन निरंकुश था। दंड व्यवस्था कठोर थी। व्यक्ति की स्वतंत्रता की सर्वया अभाव था, तथापि यह सब एक राजत्व साम्राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक होता है।

चन्द्रगुप्त की शासन व्यवस्था का चरम लक्ष्य अर्थशास्त्र के निम्न उद्धधरणों से प्रगट होता है। "प्रजाा के सुख में राजा का सुख और प्रजा की भलाई में उसकी भलााई। राजा को जो अच्छा लगे वह हित की नहीं वरन् हितकर वह है, जो प्रजा को अच्छा लगे।"

"प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां चहिते हितं।
नात्माप्रिय हितंराज्ञः प्रजानां तु प्रिसं हितम।।"

चन्द्रगुप्त के प्रशासन के सभी पक्षों पर समुचित प्रकाश डालने हेतु उसके प्रशासन को निम्न संदर्भो में विभाजित किया जा सकता है।

(1) केन्द्रीय प्रशासन

(क) सम्राट– मौर्य साम्राज्य का केन्द्रीय प्रशासन राजधानी पाटलिपुत्र से संचालित किया जाता था। जिसका मुख्य संचाालक सम्राट होता था। इस युग में गणराज्यों का ह्रास

होने लगाा था और शासन सत्ता अत्यधिक केन्द्रीय कृत होती गयी। फलरूप व शासन व्यवस्था का स्वरूप राजतंत्रात्मक हो गया, जिसमें सम्राट की स्थिति कूटस्थनीय होती थी जिसमें सभी अधिकार व शक्तियां निहित होती थी।

परम्परागत राशासत्र के अनुसार राजा धर्म का रक्षक होता है। प्रतिपादक नहीं किन्तु कौटिल्य ने दस दिश में एक नया प्रतिमान स्थापित किया कि–"राजशासन धर्म व्यवहार एवं लोकाचार आदि सबसे उपर होता है। इस प्रकार राजाओं को प्रमुख्ता दी गयी। उस बढ़ती हुई प्रभुसत्ता के कारण ही अशोक के समय राजतंत्र ने पैतृक निरंकुशता का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार उसकी शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी। वह सेना का प्रधान सैनापति न्यायपलिका व कार्यपालिका का प्रधान तथा धर्मप्रवर्तक माना जाने लगा। राशास्त्र व राजा के निर्णय के मध्य विवाद उत्पन्न होने पर राजाज्ञा को ही अंतिम प्रमाण माना जाने लगा।

यद्यपि राजा सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न एवं एकाधिकार प्राप्त व्यक्ति होता था तथापि उसके बावजूद भी वह रिंकुश या अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होता था।

1. चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में मेगस्थनीज बताता है कि– "वह दिन में सोता नहीं था अपितु निर्णय देने या अन्य सार्वजनिक कार्यो के लिए पूरे दिन राजसभा में बैठा रहता था और अपनी प्रजा के प्रतिवेदनों को सुना करता था।"
2. मेग्स्थनीज पुनः आगे कहता है कि– "जब उसका शरीर आबनूस के मुग्दरो से दबाया जाता था अथवा उसके शरीर की मालिश करने का समय रहता था तब भी वह प्रजा की शिकायतों को सुना करता था।"

इसी तरह आशोक के 6ठें शिलालेख से पता चलता है कि– "वह अपनी प्रजा के कार्य के लिए प्रतियेक स्थान पर मिल सकता था और प्रजा की भलाई के कार्य करने में उसे बड़ा संतोष मिलता था।"

इसी प्रकार अशोक प्रजा की कठिनाईयों के निवानार्थ समय–समय पर अपने गुप्तचरों, दूतों, धम्मानहो मात्रों तथा अन्य वरिष्ठ अधिकारियों को भेजता था।

3. कौठिल्य ने राजा की निरंकुशता पर रोक लगाने व अपने कर्त्तव्यों से विमुख न होने के लिए अर्थशास्त्र में स्पष्ट उल्लेख किया है कि–"राजा को प्रजा की शिकायतें सुनने के लिए सदैव सुलभ रहना चाहिए तथा प्रजा से अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करवानां चाहिए। क्योंकि जब राजा प्रजा के लिए दुर्लभ हो जाता है और अपना कार्य मातहत अधिकारियों के भरोसे छौड़ देता है तो वह प्रजा में विद्रोह की भावना पैदा करता है तथा शत्रुओं का शिकार हो जाता है।"

इस संदर्भो से ज्ञात होता है कि मौर्य सम्राट प्रजा वत्सल तथा कर्त्तव्य परायण होते थे तथा सदैव लोक कल्याण में व्यस्त रहतें थे।

4. इतना होने के बावजूद भी उसे षडयंत्रों का बराबर भय बना रहता था। मेगस्थनीज बताता है कि–"जिस समय शासक मृगया के लिए निकला था। उसकी सुरक्षा की विशेष व्यवस्था रहती थी। उसका रास्ता रस्सियों से घेर दिया जाता था। जो उसका अतिक्रमण करता था, उसे कठोर दंड दिया जाता था।"

मद्रारक्षस में भी उस बात की विशेष चर्चा मिलती है कि– चन्द्र के समय में सुरक्षा का गम्भीर प्रश्न था।

इस प्रकार कौटिल्य – राज्य के सप्तांगो – राजा अमात्य, जनपद दुर्ग, कोष सेना तथा मित्र– में राजा को ही सर्वाच्च स्थान प्रदान करता है तथा शेष अंग राजा द्वारा ही संचालित होते है तथा अपने अस्तित्व के लिए उसी पर निर्भर रहते है।

(ख) आमात्य मंत्री तथा मंत्रिपरिषद

1. कौटिल्य कहता है कि– राजत्व पद सहायको की सहायता से ही सुस्थिर रह सकता है। इसलिए राजा को मंत्रियों की नियुक्ति कर उनसे परामर्श लेना चाहिए।
2. कौटिल्य पुनः आगे कहता है कि– राजवृत्ति तीन प्रकार की होती है। प्रत्यक्ष परोदन तथा अनुभेद सभी कार्य न एक साथ होते हे न एक स्थान पर इसलिए अमात्यों की नियुक्ति आवश्यक है। कौटिल्य अमात्य एवं मंत्रीपरषिद में स्पष्ट भेद करता है।

अमात्य या सचिव एक सामान्य संज्ञा थी जिससे राज्य के सभी प्रमुख अधिकारियों का बोध होता था। युनानी लेखकों ने इन्हें सभासद तथा निर्धारक 'Coucillors and Assessors' कहा है। यह सार्वजनिक कार्यो में सम्राट की सहायता करता था। सभी अमात्य मंत्री नहीं होते थे।

"सम्राट अपने अमत्यों में– जो सभी प्रकार के आकर्षणो से परे होते थे– मंत्री नियुक्त करता था।"

"सर्वोपधा शुद्धान मंत्रिणः कुर्यात" –अथेशास्त्र

3. ये मंत्री एक छोटी उपसमिति के सदस्य थे जिसे 'मंत्रिणः' कहा जाता था। इसमे तीन चार सदस्य होते थे। सम्भवतः इसमें युवराज, प्रधानमंत्री, सेनापति या सन्निघाता (कोषाध्यक्ष) आदि सम्मिलित थे।

मंत्रिणः के अरिरिक्त एक नियमित 'मंत्रिपरिषद' भी होती थी। जिसके विषय में डायोडोरस, स्ट्रेवो तथा एरियन के विवरणें से सूचना मिलती है।

4. कौटिल्य के अनुसार– बड़ी मंत्रिपरिषद रखना राजा के जित में होता है और इससे राजा की मंत्रणा शक्ति बढ़ती है। इससे ज्ञात होता है कि मंत्रिपरिषद की सदस्य संख्या अवश्य ही काफी बड़ी थी।

आवश्यक कार्यो के विषय में निर्णय लेने के लिए इसकी सभा बुलाई जाती थी तथा बहुमत से निर्णय लिए जाते थे। किन्तु सम्राट इसके निर्णय का उलंघन कर सकता था।

मंत्रिपरिषद व मंविणः का क्या सम्बंध था। यह निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता। परन्तु ऐसा लगता है कि मंत्रिणः के सदस्य मंत्रिपरिषद के सदस्यों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होते थे। इतना वेतन भी मंत्रिपरिषद के सदस्यों से लगभग चार गुना होता था।–(48000 घण)

5. अर्थशास्त्र में मंत्रिपरिषद को एक वैधानिक आवश्यकता बताया गया है। उसके अनुसार– "राजत्व केवल सबकी सहायता से ही सम्भव है, जिस प्रकार रथ मात्र

एक पहिए से नहीं चल सकता, उसी प्रकार राजय मात्र राजा द्वारा नहीं चलाया जा सकता। अतः राजा को मंत्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए और उनकी सहायता लेनी चाहिए।"

"सहाय साहयं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तवे।
कुर्वीत सचिवान्त स्मान्तेषां च श्रणुयान्मतम्"

दुर्भाग्य वश अर्थशास्त्र में मंत्रियों के विभाग का कोई उल्लेख नहीं मिलता। मंत्रिपरिषद का कार्य– अनारब्ध कार्य को प्रारम्भ करना, आरम्भ हुए कार्य को पुरा करना, पुरे हुए कार्य में सुधार करना तथा राजकीय आदेशें का कठोरता के साथ पालन करवाना आदि बताया गया है।

रोमिला थापर के अनुसार– "मंत्रिपरिषद को कोई सुनिश्चित राजनीतिक मर्यादा प्राप्त नहीं थी और उसकी शक्ति राजा के व्यक्तित्व पर निर्भर करती थी"

अशोक के शिलालेख से ज्ञात होता है कि वह मंत्रिपरिषद से सलाह लेता था। – मंत्रिपरिषद को उसके लेखों में परिखा कहा गया है।

(ग) केन्द्रीय अधिकारी तंत्र–

1. अर्थशास्त्र में केन्द्रीय प्रशासन के लिए मंत्रिपरिषद के साथ–साथ एक विकसित अधिकारी तंत्र की स्थापना की गयी थी। ये अधिकारी विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते थे। अर्थशास्त्र में जिन्हें कही 'तीर्थ' तो कही 'महामात्य' कहा गया है– ऐसे 12 तीर्थो का उल्लेख मिलता है। जो निम्न थे– मंत्रि या पुरोहित, समाहर्त्ता, सन्निघाता, सेनापति, यूवराज, प्रदेष्टी नायक, कर्मान्तिक, व्यवहारिक, दण्डयाल, अंतपाल, दुर्गपाल, दौवारिक, आटविक आदि।

इनमें मंत्री तथा पुरोहित का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। यह प्रधान मंत्री तथा प्रमुख धर्माधिकारी होता ाा।

रोमिला थापर के अनुसार– "राजा की बढ़ती हुई शक्ति के साथ पुरोहित की शक्ति में भी वृद्धि हो रही थी और अब वह प्रधान मंत्री का कार्य करने लगा था। उसका धार्मिक परिचय निश्चित रूप से प्रष्ठ भूमि में चला गया था।"

समहर्त्ता का स्थान पुरोहित के बाद था। यह राजस्व विभाग का प्रधान अधिकारी था। राजस्व एकत्र करना, आय–व्यय का ब्यौरा रखना तथा वार्षिक बजट तैयार करना समहर्त्ता के मुख्य कार्य थे।

इसके अधीन विभिन्न प्रकार के अधिकारी होते थे। इन्हें सम्बंधित दो विीाग का अध्यक्ष कहा जाता था अर्थशास्त्र के अध्यक्ष प्रचार में ऐसे 26 प्रकार के अध्यक्षों का उल्लेख मिलता है। इन्हें मेगस्थनीज ने मजिस्ट्रेट कहा है। यथ कोषाध्यक्ष, सीताध्यक्ष, पूज्याध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, हस्थाध्यक्ष आदि।

नोट– कुछ विद्वानो का मत है कि– ये केन्द्री अधिकार्यो से अलग अन्य पदाधिकारी थे। जो सत्य प्रतीत होता है। लेकिन R.N. पाण्डेय ने इन्हें समहर्त्ता के अधीन माना है। – जो असत्य प्रतीत होता है।

– जो भी हो केन्द्रीय प्रशासन में अध्यक्षों का महत्वपूर्ण स्थान था। इन अध्यक्षों के कार्य विस्तार के अध्ययन से ज्ञात होता है। कि राज्य के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन और कार्यविधि पर पूरा नियन्त्रण रखा था। इनके महत्व का उल्लेख मेगस्थनीज ने भी किया है।

नगर प्रशासन– नगर प्रशासन का अपना अधिकारी वर्ग होता था। चन्द्रगुपत कालीन नगर प्रशासन का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र व मेगस्थनीज के विवरण से प्राप्त होता है।

मेगस्थनीज नगर अधिकारियों को 'आस्ट्रोनोई' कहा है तथा कौटिल्य नगराध्यक्ष कहा है।

1. मेगस्थनीज के अनुसार नगर का शासन तीस सदस्यों की एक समिति द्वारा होता था। उसके अनुसार नगर पर शासन करने के लिए 30 अधिकारी थे, जो 5–5 सदस्यों की 6 समितियों में बटे हुए थे। प्रत्येक समिति के जिम्में एक विभाग था। जो निम्न थी।

1. औधोगिक कलाओ से सम्बंधित समिति।
2. विदेशियों के हित के देखभाल सम्बंधी समिति।
3. जन्म–मरण सम्बंधी ब्यौरा रखने वाली समिति।
4. व्यापार व वाणिज्य से सम्बंधित समिति।
5. निर्मित वस्तुओं की सार्वजनिक विधि का निरक्षण।
6. बिकी हुई वस्तुओं पर कर संग्रह सम्बंधी समिति।

(2) प्रान्तीय शासन

किसी छोटे साम्राज्य का प्रशासन तो केन्द्र द्वारा विभिन्न अधिकारियों की सहायता से सम्भव हो जाता है किन्तु बड़े साम्राज्य का प्रशासन कठिन हो जाता है। प्राचीन विश्व में सर्वप्रथम इस कठिनाई को फारसी सम्राट द्वारा प्रथम ने अनुभव किया था तथा अपने साम्राज्य का विभाजन प्रान्तों में किया था।

शायद यहीं से शिक्षा ग्रहण करके मौर्यो ने भी प्रशासन को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए 7 अपने साम्राज्य को प्रान्तो में विभाजित किया था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में प्रांतो की संख्या कुल कितनी थी निश्चित नहीं हे। लेकिन अशोक के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण साम्राज्य 5 भागो में विभक्त था।

1. उत्तरा पथ– इसमें परिचमोत्तर प्रदेश सम्मिलित था। इसकी राजधानी तक्षशिला थी।
2. अवंतिरढ़– (उज्जयिनी)
3. कलिंग– (तोसलि)
4. दक्षिणा पथ– इसमें दक्षिणी भारत का प्रदेश सम्मिलित था। इसकी राजधानी सुवर्ण गिरी थी।

5. प्राच्य या प्राची– इससे तात्पर्य पूर्वी भारत से है। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। सम्राट यहीं से सम्पूर्ण साम्राज्य कार शासन करता था।

सम्भावना व्यक्त की जाती है कि सौराष्ट्र भी चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का एक अंग था। इतिहासकारों के अनुसार सौराष्ट्र की स्थिति अद्धस्वतन्त्र प्रांत की थी और चन्द्रगुपत के समय पुष्यगुप्त तथा अशोक के समय तुषासक की स्थिति अर्द्ध स्वाशासन प्रांत सामंत की थी। तथापि उसके कार्यकलाप सम्राट के हि अधिकार क्षेत्र के तहत आते थे।

प्रांतो का शासन वायसराय रूपी अधिकारी करता था। ये अधिकारी राजकुल के होते थे। अशोक के केन्द्रीय शासन की भांति प्रान्तीय शासन में भी एक मंत्रिपरिषद होती थी।

रामिला थापर का सुझाव है। कि – "प्रान्तीय परिषद केन्द्रीय मंत्रिपरिषद की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र होती थी और यह दिव्यावदान के कुछ उद्धधरणों से उन्होने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रांतिय परिषद का सम्राट से सीधा सम्पर्क था।"

दूसरे अशोक के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि समय–समय पर केन्द्र से सम्राट प्रांतों की राजधानियों में महामात्रों को निरीक्षण के लिए भेजता था। इससे भी नियंत्रण का पता चलता है।

मंडल जिला प्रशासन

प्रत्येक प्रांत कई मंडल में विभक्त थे जिनकी समता हम आधुनिक कमिश्नरियों से कर सकतें हे। अर्थशास्त्र में उल्लिखित प्रदेष्टा नामक अधिकारी मंडल का प्रधान होता था। अशोक के लेखों में इसे प्रादेशिक कहा गया है।

मंडल का विभाजन जिलों में हुआ था। जिसे आहार या विषय कहा गया है। जो सम्भवतः विषयपति के अधीन था। जिले के नीचे स्थानीय होता था– इसमे लगभग 800 ग्राम के स्थानीय के तहत द्राणमुख था। जिसमें 400 ग्राम थे। द्रोणमुख के नीचे खार्वटिक तथा खार्वटिक के नीचे संग्रहण, संग्रहण के नीचे ग्राम होते थे। ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थे। प्राचीन भारत में ग्राम सदा से ही स्वतन्त्र अवस्था में रहे है। मौर्यो के समय में भी यही स्थिति रही। ग्राम का अध्यक्ष ग्रामणी होता था। यह ग्रामवासियों द्वारा निर्वाचित होता था तथा वेतन भोगी कर्मचारी नही था।

अर्थशास्त्र ग्राम वृद्धो की परिषद का उल्लेख करता है। इसमें ग्राम के प्रमुख व्यक्ति होते थे। राज्य सामान्यतः ग्रामों के शासन में हस्तक्षेप नहीं करता था। यह छोटे–छोटे विवादों का फैसला व जुर्माना करती थी तथा राजकीय कर एकत्र कर राजस्व में जमा करवाती थी।

न्याय व्यवस्था– मौर्य प्रशासन का एक महत्वपूण पदन निष्पक्ष व कठोर न्यायव्यवस्था थी। सम्राट सर्वोच्च नयायधीश होता था। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण साम्राज्य में अनेक अदालते थी। सबसे नीचे ग्रामस्तर, म्राम न्यायालय थे जहां गामीण तथा ग्रामवृद्ध कतिपय मामलों में अपना निर्णय देते थे। ग्राम न्यायालय के ऊपर संग्रहण, द्रोणमुख स्थानीय तथा जनपद स्तर के न्यायालय होते थे। सबसे ऊपर पाटलिपुत्र का केन्द्रीय

न्यायलय था जिसका प्रधान न्यायाधीश सम्राट होता था। न्यायालय मुख्यतयः दो प्रकार के थे।

(1) धर्मस्थीय (2) कंण्टक शोधन।

(1) धर्मस्थीय नयायालय में व्यक्तिगत विवादों का निर्णय होता था और कुण्टक शोधन में राज्य तथा व्यक्ति के मध्य उत्पन्न विवादों को सुना जा था।
नीलकण्ठ शास्त्री के अनुसार– "कण्टक शोधन न्यायालय एक नये प्रकार के न्यायालय थे, जो मौर्य साम्राज्य की अधिक्रमित जटिल सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बनाये गये थे, ताकि एक अत्यंत संगठित शासन तंत्र के विविध विषयों से सम्बंध नितियों को कार्यान्वित किया जा सकं। वे एक प्रकार के विशेष न्यायालय थे जहां अभियोगो पर तुरंत विचार किया जाता था।"
गुप्त व्यवस्था– मौर्य प्रशासन का एक बुनियादी पक्ष गुप्तचर प्रणाली थी। यह विभाग एक प्रथक अमात्य के अधीन रखा गया, जिसे महामात्यापसर्प कहा जाता था। गुप्तचरों को अर्थशास्त्र में मूठ–पुरूष कहा गया है।

गुप्तचर व्यवस्था की महत्वा को बताते हुए (1) कौटिल्य ने लिखा हे कि– "राजा को शत्रु, मित्र, मध्यम तथा उदासीप राजाओं मांर्ग पुरोहित सेनापति तथा अन्य कर्मचारियों व अधिकारियों की गति विधियों को जानने के लिए, गुप्तचरों को नियुक्ति करना चाहिए"
(2) अर्थशास्त्र में गुप्तचरों के प्रचुर प्रयोग का अनुमोदन करते हुए परामर्श दिया गया है कि "उन्हें एकान्तवासियों, गृहरथो, व्यापारियों, सन्यासियों, विधार्थियों, भिखारियों तथा वेश्याओं के भेष में काम करना चाहिए।" –मेगस्थनीज
यूनानी लेखकों ने गुप्तचरों को निरीक्षक तथा ओवर सियर्स कहा है।

(3) अथेशास्त्र में दो प्रकार के गुप्तचरों का उल्लेख मिलता है।
(क) संस्था (ख) संचरा

संस्था के गुप्त चर एक स्थान पर रहकर गुप्तचरों करते थे, जबकि संचरा भ्रमण कमेटी टीम थी। ये इधर–उधर घूमकर सूचनायें एकत्र करते थे। यदि कोई गुप्तचर गलत सूचनायें देता था तो उसे दंडित किया जाता था। कही –कही ठोश्याये भी गुप्तचरों के पदों पर नियुक्ति की जाती थी।
विदेशियों की सुरक्षा– चन्द्रगुप्त के शासन की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। विदेशियों की सुरक्षा की उचित व्यवस्था। इसकी पुष्टि स्ट्रेवो व डायोडेरया की कृतियों से भी हो जाती है।

विदेशियों की सुरक्षा के लिए एक विशेष प्रकार के अधिकारी रहते थे। इनकी जिम्मेदारी थी कि किसी विदेशी के साथ दुर्व्यवहार न होने पाये न अस्वस्थ होने पर उनकी चिकित्सा की व्यवस्था की जाती थी। मृत्यु के बाद उनकी सम्पत्ति उनके उत्तराधिकारियों को सौंप दी जाती थी।
सैन्य संगठन– मौर्य सम्राट सैन्य व्यवस्था पर काफी बल देते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य निःसंदेह एक बड़ी सेना का स्वामी था। उसने न केवल पंजाब से यूनानियों को एवं मगध से नंद शक्ति का समापन किया बल्कि समस्त उत्तर भारत को रौंद डाला।

डा0 राधाकुमुल मुखर्जी ने एरियन के वृत्तांतो के आधार पर मत व्यक्त किया है कि– "चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना में 6 लाख पैदल 30 हजार घुड़ सवार तथा 9 हजार हाथी तथा 300 रथ थे।" सैनिकों को नकद वेतन दिया जात था।

1. मेगस्थनीज ने सेना के 6 अंगो का उल्लेख किया है, नौसेना, पदाति, अश्वारोही, हस्तिबल, रथ तथा यातायात

2. मेगस्थनीज पुनः लिखता है कि– सेना का प्रबंध 6 समितियों द्वारा होता था।

मौर्यो के पास शक्तिशानी नौसेना () भी थी। अर्थशास्त्र में 'नवाध्यक्ष' नामक पदाधिकारी का उल्लेख हुआ है। जा युद्धयोतों के अतिरिक्त व्यापारिक पोतो का भी अध्यक्ष होता था। सीमांत प्रदेशों की रक्षा सुदृढ़ दंगो द्वारा की जाती थी अंतपाल नामक पदाधिकारी दुर्गो के अध्यक्ष होते थे।

वित्तव्यवस्था– चन्द्रगुप्त की सुसंगठित प्रशासनिक व्यवस्था सुदृढ़ वित्तीय व्यवस्था पर आधारित थी। वास्तव में दस युग में पहली बार राजस्व प्रणाली की रूप रेखा तैयार की गयी । जिसका पर्याप्त विवरण कौटिल्य ने भी दिया है। राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत भूमिकर था। यह सिद्धोतः उपा का भूमिकर को भाग कहा जाता था।

राजकीय आय के अन्य स्त्रोत थे– खालसाभूमि से आय, सीमा शुल्क, चुंगी, बिक्रीकर, सडको, घरों, खानों यातायात कर आदि।

3. अर्थशास्त्र से पता चलता है कि– अनेक व्यवसाय ऐसे थे जिन पर राज्य का पूर्ण अधिपत्य था और जिसका संचालन राज्य द्वारा किया जाता था। इनमें, खान जंगल नमक अस्त्र–शस्त्र मुख्य व्यवसाय थे।

समीक्षा–

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मौर्य शासन व्यवस्था का मूल उद्‌देश्य जनहित तथा लोकोपकारिता था। राज्य को साध्य न मानकर साधन माना गया। चन्द्रगुप्त स्वंय निरंकुश होते भी व्यवहार वह धर्म, लोकाचार तथा न्याय के अनुसार शासन करता था। उसे निरंतर प्रजाहित की चिंता बनी रहती थी– अपनी प्रजा वत्सत्ता के कारण चन्द्रगुप्त को इतिहास में त्रबुद्ध निरंकुश Enlightened Despot के नाम से विख्यात है। महान अशोक तो इस माले में अपने पूर्वजों को काफी पीछे छोड़ दिया। उसने समस्त प्रजा को अपनी संतान के यप में चित्रित किया है। अभिलेखों में वह कहता है कि – "जिस प्रकार मां अपने बच्चे को एक कुशल घाय को सौंपकर निश्चिंत हो जाती है। उसी प्रकार मैने राजूओं को नियुक्त करके अपनी प्रजा से निश्चिंत हो गया हूँ।" दूसरे उसके अभिलेखों से सूचना मिलती है कि वह प्रजा के कल्याणार्थ व उनकी परेशानियों को जानने के लिए विभिन्न अधिकारियों को सम्पूर्ण देश में दौरा करने की आज्ञा जारी करता था। नागरिकों के सवास्थ्य एवं शिक्षा के लिए अनेक प्रकार के औषाधालयों एवं विद्यालयों की स्थापना की गयी थी।जिसका पर्याप्त विवरण अशोक के अभिलेखों में मिलता है।

निष्कर्षतः मौर्य साम्राज्य का मूल उद्‌देश्य था।

"प्रजा सुखें सुखम राजः प्रजानाम् चहिते हितमं"

मौर्य–साम्राज्य के पतन के कारण

लगभग तीन शताब्दियों के उत्थान के बाद शक्तिशाली मौर्य साम्राज्य का अशोक की मृत्यु के सााथ जिस रानीतिक ड्रास का सूत्रपात हुआ, उससे शीघ्र ही छिन्न–भिन्न हो गया। अत्वोगत्वा 189 B.C के लगभग अंतिम मौर्य सम्राट बृद्रथ की उसके अपने ही सेनापति पुष्यामित्र द्वारा हत्या के साथ मौर्य साम्राज्य रूपी सूर्य भारतीय क्षितिज से सर्वदा के लिए विलुप्त हो गया। मौर्य साम्राज्य का पतन किसी कारण विशेष का परिणाम नहीं था। जेसा कि कुद लोगों ने अशोक की नीतियों को उत्तरदायित्व ठहराया है। रोमिलाथापर का विचार है कि ″इस राजनीतिक ह्रास का कारण कुछ सीमा तक वही था जो हाल के वर्षो तक भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश साम्राज्यों के पतन के लिए उत्तरदायी रहे है। सामान्यतः इस साम्राज्य के विघटन तथा पतन के लिए निम्नलिखित कारणों को उत्तरदायी माना जा सकता है।″

1. अयोग्य व निर्बल उत्तराधिकारी7 मौर्य साम्राज्य के पतन का तात्कालिक कारण अशोक के बाद योग्य उत्तराधिकारी का अभाव था। निश्चय ही यदि किसी साम्राज्य में चाहे कितनी भी बुनियादी कमजोरियां हो या कितनी भी गलत नीतियों क्यों ही न हो यदि उसको सौभाग्य वंश अशोक, समुन्द्रगुप्त और अकबर जैसा उत्तराधिकारी मिल जाता है।

दूसरे अशोक के उत्तराधिकारी न मात्र निर्बल ही थे बल्कि वे आसी कलह, घृणा और गृहयुद्ध का भी शिकार थे– जो और भी घातक था। साहित्यिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि उन्होंने साम्राज्य का विभाजन कर लिया था। राजतंरिगिणी से ज्ञात होता है कि– काश्मीर में जालौर ने स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर लिया था। तारानाथ के विवरण से ज्ञात होता है कि– वीसेन ने गन्धार प्रदेश में अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया था।

कालिदास के मालकिाग्निमित्र के अनुसार– विदर्भ भी एक स्वतंत्र राज्य हो गया था।

डा0 रामचौधरी का कथन सही प्रतीत होता है कि ″अशोक के उत्तराधिकारीयों में साम्राज्य के विघटन को रोक्ने की न शक्ति थी न इच्छा।″

इसी प्रकार नीलकंठ शास्त्री का मत है कि ″अशोक मौर्यो में ही नहीं प्रधान था वरन् वियव के योग्यतम् शासकों में था। नियिचत ही उसके पुत्रयौत्मादि उतने योग्य नहीं थे कि वे परम्परागत विशाल साम्राज्य को सुरक्षित रखते।″

(2) प्रशासन का अतिशय केन्द्रीकरण

मौर्य प्रशासन में सभी महत्वपूर्ण कार्य राजा के प्रत्यक्ष नियंत्रण में होते थे। रोमिलाथापर के अनुसार–″इस प्रणानी में नौकरशाही का बहुत ज्यादा केन्द्रीकरण था, जिसमें मूल

केन्द्र बिन्दू शासक था और सारी निष्ठा का लक्ष्य वरूक्तिगत रूप से राजा होता था। राजा के परिवर्तित होने का अर्थ निष्ठा का नये सिरे से स्थापना ये उससे ीाी बुरीबात अधिकारियों का परिवर्तन था। क्योंकि नियुक्तियों की प्रणाली निरंकुश थी न कि योग्यता के आधार पर ।"

पुनः प्रा0 हरीप्रसाद शास्त्री डा0 S.P. चौधरी , डा0 कौशाम्बी, N.R. आदि विद्वानों के सम्यक अनुशीलन तथा उसके निराकरण के पश्चात डा0 रोमिला थापर प्रस्तावित करती है कि "मौर्य साम्राज्य के पतन की संतोष जनक व्याख्या सैनिक अकर्मण्यता, ब्राह्मण रोध, सार्वजनिक विद्रोह, आर्थिक दबाव के आधार पर नही की जा सकती। शासन के संगठन और राज्य की संकल्पना का मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणो में बहुत महत्व पूर्ण स्थान है।"

रोमिला थापर का विचार है कि– "मौर्ययुग में प्रशासन का स्वरूप केन्द्रीयकृत था तथा महत्वपूर्ण निर्णय शासक स्वंय लेता था तथा उसकी शक्ति दुर्बल पड़ने पर शासन का दुर्बल होना स्वाभाविक था। सम्राट द्वारा चुने गये अधिकारी सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे न कि राज्य के प्रति मौर्य युग में अधिकारियों के चुनाव के लिए किसी प्रकार की संस्था न थी।"

दूसरे जनमत का प्रतिनिधित्व करने वाली किसी संस्था का अस्तित्व नहीं था। कार्यकारिणी तथा न्यायपालिका में कोई भेद नहीं था। ऐसी स्थिति में शासक की योग्यता का अत्यधिक महत्व होता है। जिसमें कि अशोक के उत्तराधिकारियों में अभाव था।

रोमिला थापर प्रशासन सम्बंधी– दूसरी कभी का उल्लेख करती हुई कहती है कि "अधिकारी तंत्र भली भांति प्रशिक्षित नहीं था और अधिकारियों का चुनाव प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर नहीं किया जाता था।"

इस विद्वान लेखिका का मत निःसंदेह सत्य है लेकिन प्रतियोगिता परीक्षओं के आधार पर न चुने जाने का तात्पर्य यह नहीं था कि अधिकारियों के चुनाव योग्यता के आधार पर नहीं किया गया था। अर्थशास्त्र में अधिकारियों तथा अमाव्यों की नियुक्ति और उनकी योग्यता आदि का विषद वर्णन मिलना है।

अभी हाल में प्रकाशित प्राचीन भारत का इतिहास नामक ग्रंथ में– डा0 H.S. कौटियाल ने डा0 थापर के मतों का विद्वता पूर्व खण्डन किया है।

कौटियाल के अनुसार– आधुनिक प्रतियोगिता की परिक्षा की कल्पना करना उस युग में ऐतिहासिक दृष्टि से अनुचित होगा।

डा0 थापर के प्रतिनिधि सभा के अभाव के मत का खण्डन करते हुए डा0 कौटियाल ने कहा है कि–

यद्यपि प्रतिनिधि सभा का अभाव था अवश्य लेकिन राजतंत्र पर आधारित सभी प्राचीन और मध्यकालीन राज्यों की यही विशेष्ता थी। ऐसी स्थिति में हम प्रतिनिधि सभा के अभाव को पर्टन का दायी नहीं ठहरा सकते।

रोमिला थापर ने यह भी सुझाया है कि – "मार्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था में राज्य की कल्पना का अभाव था। राज्य की कल्पना का तात्पर्य यह है कि – राज्य को राजा शासन तथा सामाजिक व्यवस्था से उपर माना जाय।"

डा0 कौटियाल ने इस मत का खंडन करते हुए लिखा है कि "मौर्य शासन में राज्य की कल्पना अवश्य की गयी थी। कौटियाल ने जिस राष्टीयता की कल्पना की थी, वह काफी विकसित है।"

किन्तु यदि यह भी मान लिया जाय कि मौर्ययुग में राज्य की कल्पना का अभाव था, तो यूनान के अतिरिक्त विश्व में प्राचीन तथा मघ्यकाल में राज्य की ऐसी संकल्पना नहीं पायी जाती। जहां राज्य–राजा अथवा समाप से ऊपर हो और जिसके प्रति राजा व समाज से ज्यादा निष्ठा हो।

थापर ने यह भी कहा था कि उस युग में राष्ट्रीय भावना का भी अभाव था। डा0 कौठियाल ने कहा है कि– यही मत राष्ट्रीय भावना के सम्बंध में भी कही जा सकती है। राष्ट्र की भावना आधुनिक राजनीतिक तत्व है। प्राचीन तथा मध्यकाल में इसकी खोज करना व्यर्थ है।

निष्कर्षः– निसंदेह उस विद्वान लेखिका ने मौर्यो सम्राट के पतन के कारणों की एक नवीन व्याख्य प्रस्तुत करने की चैष्टा की है। उनका यह विवेचन मुख्य रूप से मौर्य युगीन प्रशासनिक व्यवस्था की विशेषताओं पर आधारित है। फिर भी इन्होंने जो विचार सुझाये है, उनमें से कोई भी मौर्य साम्राज्य के पतन का प्रबल कारण प्रतीत नहीं होता है।

निष्कर्ष रूप में थापर ने अपने ग्रंथ Ashok and the decline of the Mauryas में प्रशासन के संगठन तथा राष्ट्र अथवा राष्ट्र की अवधारणा की ही मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों में सर्वाधिक महत्व पूण बताया है। "The Orgnanization of administration and the Conception of the state or Nation were of the great significance n the causes of the decline of Maurayas"

(3) कराधिक्य व आर्थिक दबाव–

डी0 डी0 कौशाम्बि ने– मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण क्षतिग्रस्त व डाबाडोल अर्थव्यवस्था को माना है। इनका विचार है कि परवर्ती मौर्य युग में अर्थव्यवस्था पर अत्यधिक दबाव पड़ा था। आप की यह अवधारणां इस युग में परवर्ती मौर्यो कर बृब ग्र बहए अपनाये गये विविध उपायों तथा मौर्य युगीन आहत मुद्रओं में विद्यमान खोटेपन पन आधारित है।

डा0 थापर ने कौशाम्बी के मत का खंडन करते हुए लिखा है कि–(1) मौर्यो के काल में ही सर्वप्रथम आय के प्रमुख साधन के रूप में करों के महत्व को समझा गया। (2) दूसरे विकसित अर्थव्यवस्था और राज्य के कार्य क्षेत्र के विस्तार के साथ करों में वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। (3) तीसरे वरवर्ती मौर्यो ने जो–जो कर लगाये वे अर्थशास्त्र के अनुरूप थे।(4) सिक्कों के खोटेपन के सम्बंध में थापर लिखती है कि –

सिक्कों में मिलावट के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि अर्थव्यवस्था पर भारी दबाव था।– आप का विचार है कि – सिक्कों में खोटेपर व मिलावट का मुख्य कारण – उत्तर कालीन मौर्यो के समय में नियंत्रण बड़ी कभी व शिथिलता थी।

इसके अलावा कोशाम्बी की यह अवधारणा इस आधार पर बनी कि–' ये आहत सिक्के मौर्य काल के है किन्तु यह निश्चित नहीं है। हस्तिना पुर तथा शिशुपाल गढ़ की खुदाईयों से जो मौर्य कालीन अवशेष मिले है, उनसे एक विकसित अर्थव्यवस्था तथा भौतिक समृद्धि का परिचय मिलता है। यद्यपि कौशाम्बी की धारणा के विरूद्ध जो तर्क दिये गये है। वे तार्किक अवश्य है लेकिन कौशाम्बी के मत को उतना आसनी से नकारा नहीं जा सकता है।

"यद्यपि देखा जाय तो मौर्य अर्थव्यवस्था पर परवर्ती मौर्यो के समय पर, चन्द्रगुप्त के तथा अशोक के समय से ही दबाव पड़ रहा था। जिसका स्पष्ट उल्लेख कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कोष की महत्वा में प्रतिपादित कर के किया है।"

चाणक्य कहता है कि "कोषारिक्त होने पर राजा जनता का शोषण करने लगता है।"

अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि "अभिनेताओं और गुणिकाओं स्थाहित नाना प्रकार के कर लगाये गये थे।

मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था की दुर्बलता का अहसास स्वंय अशोक के अभिलेखों से भी होता है। जिसमें उत्सवों समाजों, अमांगलिक कार्यो पर प्रतिबंध लगाता है। यद्यपि उनके कारण धार्मिक भी थे।

पतंजलि ने लिखा है कि – मौर्य शासक अपना कोष भरने के लिए जनता की धार्मिक भावना जागृत करके धन संग्रह किया करते थे।

डा0 भण्डारकर का विचार है कि– मौर्य शासको देवी देवताओं की मूर्तिया बनवाकर बेचना शुरू कर दिया था।

"इस प्रकार निःसंदेह कहा जा सकता है कि परवर्ती मौर्यो को एस क्षतिग्रस्त व कमजोर अर्थव्यवस्था विरासत में मिली थी– जिनको उन्होंने उपनी अयोग्यता के कारण और डाबाडोल बना दिया होगा।"

इसमें संदेह नहीं कि अशोक की दानशीलता अर्थव्यवस्था को क्षतिग्रस्त न कर दिया हो। इस समय प्रभूत धराशि , सैन्य संगठन सामाजिक कल्याण पर न खर्च करके, बौ0 मणें व भिक्षुओं पर खर्च की जाती है। निःसंदेह यह नीति घातक थी।

(4) प्रान्तीय शासकों अत्याचार पूर्ण व्यवहार– डा0 हेमचन्द्रराय चौधरी मौर्य वंश के कारणों में मौर्य साम्राज्य के दूरस्थ प्रांतों के अधिकारियों के जनता पर अत्याचार पूर्ण शासन व व्यवहार को भी मानते है।

डा0 चौधरी अपने मत की पुष्टि में दिव्यावदान की दो कथायें उदृत करते है। जिनमें इस प्रकार के अधिकार पूर्ण व्यवहार की चर्चा मिलती है।

एक कथा के अनुसार– जब बिंदुसार ने तक्षशिलाा में हुए विद्रोह का दमन करने के लिए अशोक को भेजा तो, वहां के निवासियों ने अशोक से कहा कि–"हम न राजकुमार के विरूद्ध हें न शासक के थे दुष्ट हमारा अपमान करते है।"

"न वयं कुमारस्थ विरूद्धाः नाथि राज्ञो विंदसारक्ष्य।
अपितु दुष्टाः अमत्याः अष्मांक पीरभवं कुर्वन्ति।।"

दूसरी बार– जब अशोक के समय में तक्षशीला में विद्रोह हुआ तो अशोक ने कुशल को भेजा था, तो इस बार भी जनता ने यही प्रश्न किया था। इसकी पुष्टि अशोक के कलिंग अभिलेख से ीाी होती ळै। उसमें अशोक कलिंग के अधिकारियों को सम्बोधित करते हुए कहते है कि– "नागरिकों की नजर बंदी या उनको दी जाने वाली यातनाये अकारण नहीं होनी चाहिए। शायद इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अशोक ने प्रतिपांचते वर्ष केन्द्र से नीरीक्षपादन के लिए उच्चाधिकारियों को भेजने की व्यवस्था की थी। तक्षशिला तथा उज्जयिनी में ऐसी व्यवस्था प्रति तीसरे वर्ष थी।"

इस प्रकार अत्याचार के कारण ये दूरस्थ प्रांत अवसर पाते ही सवतंत्र हो गये। कलिंग और उत्तरावध की सम्भवतः दक्षिणापथ ने सबसे पहले मौर्य सम्राज्य से सम्बंध विच्छेद कर लिया। उस संदर्भ में डा0 राय चौधरी का मत उचित ही प्रतीत होता है कि –"पुष्यामित्र की सैनिक क्रांति तथा यूनानी आक्रमण के काफी पहले से ही मौर्य साम्राज्य के दूरस्थ प्रांतों की वफादारी में माफी कमी आ गयी थी।"

(5) सार्वजनिक विद्रोह– प्रो0 निहार रंजन रे के अनुसार पुष्यमित्र शुंग ने जिस आंदोलन का नेतृत्व किया वह एक प्रकार का सामाजिक विद्रोह था। उसका मूल कारण मौर्य राजाओं द्वारा प्रशासन विचारों को अपनाना था।

अपने तर्क में श्री रे कहते है कि मौर्य कला तथा प्रशासन स्पष्ट रूप से यूनानी कला से प्रभावित है। दूसरे विद्रोह का कारण अशोक द्वारा समाजों का निषेध था, ये तर्क असंगत है।

डा0 नीलकंठ शास्त्री उचित कहते है कि–"पुष्यमित्र द्वारा राज्य ग्रहण मौर्य शासन के विरूद्ध किसी सार्वजलिक विद्रोह का परिणाम न होकर आकास्मिक शासन परिवर्तन मात्र था।"

दूसरे– मौर्ययुग में पूजा में इतनी राष्ट्रीय चेतना नही थी कि –वह मौर्य शासकों के अत्याचार के विरूद्ध विद्रोह कर पुष्यमित्र का साथ देती।

(6) विदेशी आक्रमण– डा0 R.C. मजूमदार कके अनूसार– मौर्य साम्राज्य के विघटन का तात्कालिक कारण वैम्ट्रियन यूनानियों का आक्रमण था। मौर्य युग के अंतिम दिनोंमें उत्तरी भारत में यवन आक्रमणकारी आधमके थे। प्रांजलि के महाकाव्य, गार्गी संहिता, मालविकाग्निमित्रम्, विष्णुपुराण, भागवतपुराण तथा राजतरंगिणी आदि में सम्मिलित साक्ष्यों से इस कथन का समर्थन हो जाता है।

(7) मौर्यो साम्राज्य के विरोध में वैदिक प्रतिकिरण अथवा अशोक की उत्तरदायित्व – मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए कुछ विद्वानों ने अशोक की नीतियों को मुख्य रूप से

उत्तरदायी माना है। इनमें महामहोपाध्याय प0 हर प्रसाद शास्त्री व डा0 हेमचन्द्रराय चौधरी मुख्य है। शास्त्री ने जहां अशोक की धार्मिक या ब्राह्मण विरोधी नीति को दायी माना है। वही चौधरी इस का खंडन करके, अशोक की शांति प्रियता व अहिंसा की नीति का दायी माना है।

शास्त्री जी ने अशोक की धार्मिक नीति को ब्राह्मण विरोधी कहा है। उनके अनुसार उसकी यह नीति बौद्धों के पक्ष में थी तथा ब्राह्मणों के विशेषाधिकारी तथा उनकी सामाजिक श्रेष्ठता पर कूठाराघात थी। अतः ब्राह्मणों में प्रतिक्रिया हुई, जिसकी चरम सीमा पुष्यमित्र के विद्रोह में दृष्टिगोचर होती है। फलस्वरूप मौर्य साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया। आपने अपने मत के पक्ष में निम्न तर्क दिये है। **(1)** प्रथम– अशोक ने पशुबलि, यज्ञ तथा हिंसाा पर प्रतिबंध लगा दिया। यह ब्राह्मणों पर खुला प्रहार था। चुंकि वे ही यज्ञ कराते थे और उसरूप में वे मनुष्यों तथा देवताओं के मध्य मध्यप्रस्थ्ता करते थे। अतः निःसंदेह अशोक के उस प्रतिबंध से उनकी शक्ति तथा सम्मान दोनों को भारी धक्का लगा।

(2) अपने ब्रह्म गिरी के लघु शिलेलेखों में अशोक कहता है कि – ''जो अपने को पृथ्वी का देवता कहते थे उन्हें मैं नकली रूप में ला दिया है।'' (ब्राह्मण भू–देव कहे जाते थे।) यह कथन स्पष्ट रूप से ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा के विनाश की सूचना देता है।

(3) अशोक ने धम्म महामात्रों की नियुक्ति करके ब्राह्मणों के अधिकारों का प्रत्यक्ष अपहरण था।

(4) अशोक अपने पांचवे स्तम्भ लेख में हमें बताता है कि– उने न्याय प्रशासन के क्षेत्र में दण्डसमता व व्यवहार समता का सिदान्त लागू किया। उससे ब्राह्मणों को दण्ड से मुक्ति का जो विशेषाधिकार प्राप्त था। यह समाप्त हो गया।

(5) शास्त्री जी का एक अन्य मत है कि– अशोक शाक्ति शानी राजा था अतः ब्राह्मणों को दबाकर अपने नियंत्रण में रखे रहा। लेकिन उसके निर्बल उत्तराधिकारी ऐसा न कर पाये फलस्वरूप मौर्य साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया। डा0 राय चौधरी ने शास्त्री जी के मतों का खंडन निम्न आधारों पर किया था।

(अ) अशोक की अहिंसा की नीति ब्राह्मणों के विरूद्ध नहीं थी क्योंकि ब्राह्मणों में भी अहिंसा का विधान मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद उसका जवलंत प्रमाण है। आज का कहना है कि अशोक ने पशुबलि पर पूर्ण प्रतिबंध नहीं लगाया था–(एक मोर दो मृग मारे जायेगे)– पुनः ब्राह्मणग्रंथों में ीाी यज्ञादि के अवसर वर पशु बलि के निषेध की विधान मिलता है।

(ब) शास्त्री जी ने ग्रहमगिरी के लघु लेखकों का गलत अर्थ लगाया है। सिलवा लेवी ने इसका दूसरा अर्थ लगाया है। जो व्याकरण की दृष्टि से काफी तर्क संगत है।

सिलवाँ सेवी के अनुसार–"भारतवासी जो पहले देवताओं से अलग थे अब देवताओं से मिला दिये गये।"अतः यह वाक्य ब्राह्मण विरोधी नही प्रतीत होता।

(स) डा0 चौधरी के अनुसार– धम्ममहामात्रों के दायित्वों में ऐसी कोई उल्लेख नहीं था जिसे ब्राह्मण विरोधी कहा जा सके। इनका प्रमुख कार्य धर्म का प्रचार करना तथा दानशीलता को उत्साहित करना था। वे ब्राह्मण तााि श्रमण सभी के आध्यात्मिक तथा भौतिक उत्थान के लिए नियुक्त किये गये थे।

पुनः अशोक अपने अभिलेखों में बार–बार कहता है कि ब्राह्मणों के साथ उदार बर्ताव किया जाये।

(क) अशोक ने न्याय प्रशासन में एकरूपता लाने के लिए– दण्डसमता व व्यवहार समता का विधान किया था।

(ख) उस बात का कोई संकेत नही मिलता कि परवर्ती मौर्य नरेशों व ब्राह्मणो के मध्य संघर्ष हुआ था और उनके मध्य सम्बंध मधुर नहीं था। इसका सर्वाधिक ज्वलंत प्रमाण है कि ब्राह्मण पुष्यामित्र युग का सेनापति के पद पर नियुक्त होना है।

(ग) शास्त्री जी मत कि मौर्यशुद्र थे नितांत तर्क संगत व छिछला है। अब यह सर्वसम्मत से सवीकार किया जाता है कि– मौर्य क्षत्रिय थे।

(घ) चौधरी जी यह प्रस्तावित करते है कि– बसांची भरहुत के अवशेष इसकी पुष्टि नहीं करते शुंग ब्राह्ममण विरोधी थे

(ड) राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि जालौर व ब्राह्मणों के सम्बंध मधुर थे।

(2) प0 हर प्रसाद शास्त्री के मत खंडन करने के बाद डा0 राय चौधरी स्वंम व अशोक की शांतिवादी व अहिंसात्मक नीति को मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण मानते है।

डा0 चौधरी के मत से समहत होते हुए नीलकण्ठशास्त्री भी प्रस्तावित करते है कि– "उसकी बौद्ध नीति संकीर्ण नहीं थी, उसकी धार्मिक नीति विश्वात्मक सहिष्णुता एवं विविध धर्मो में मैत्री स्थापित करने की थी। जो आदर सम्मान श्रमणों का होता था वही ब्राह्मणों का भी।"

डा0 R.K. मुकर्जी का मत है कि–"सेनापति पुष्यमित्र को क्रांति में सफलता इसलिए मिली, क्योंकि वह मौर्य सेना पर पूर्ण नियंत्रण रखता था। इसलिए नहीं कि वह ब्राह्मण था।" डा0 रोमिला थापर– का भ विचार है कि–"जैसा कि अतीत में निश्चय के साथ कहा जाता रहा है। कि मौर्य साम्राज्य का पतन मुख्यवयः अशोक की ब्राह्मण विरोधी नीतियों के कारण हुआ, असंगत प्रतीत होता है। क्योंकि उसकी सामान्य नीति न तो विशिष्ट रूप से बौद्ध समर्थक थी और न ही ब्राह्मण विरोधी।"

अभी हाल में प्रो0 दशरथ शर्मा ने ुपुनः शास्त्रों के मत का समर्थन किया है। प्रो0 शर्मा के अनुसार "अशोक ने पूशुबलि तथा यज्ञो पर रोक लगा दी उससे ब्राह्मणों की आय तथा प्रतिष्ठा दोनो प्रभावित हुई। इस प्रकार अशोक की सहिष्णुता की नीति के बावजूद भी ब्राह्मण विरोधी हो गये।"

Dr. R.D. बनर्जी, R.K. मुखर्जी, डा0 भंडारकर, राय चौधरी तथा N.N घोष आदि विद्वानों का मत है कि– अशोक की शांति प्रियता तथा अहिंसात्मक नीति ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए जिम्मेदार थी।

डा0 बनर्जी का मत है कि–"अशोक के आदर्शवाद तथा धार्मिक नीति से अनुशासन प्रभावित हुआ। उसके समय में भेरी घोष का स्थान धम्म घोष ने ले लिया तो स्वंय उसने साम्राज्य के पतन की घंटी बजा दी।"

डा0 भन्डारकर का विचार है कि – "साधारण विजय के स्थान पर धम्म विजय की नीति उपनाने का परिणाम अध्यात्मिक दृष्टि से शानदार होते हुए भी रानीतिक दृष्टि से विनाशकारी सिद्ध हुआ। हिन्दु मानस जो पहले से ही आध्यात्मिक था अब और अध्यात्मिक हो गया।"

डा0 राय चौधरी के अनुसार– "अशोक की शांति और अहिंसा की नीति ने देश को सैलिक दृष्टि से अत्यंत निर्बल करा दिया। कलिंग युद्ध के बाद साम्राज्य की सेना का सामाजिक उत्साह ठड़ा पड़ गया। युद्ध विजय के स्थान पर धम्म विपय की नीति अपना ने से साम्राज्य की शक्ति क्षीण हुई। उसने एपने पुत्रों को विजय और रक्तपात न करने का उद्देश्य दिया। उसके उत्तराधिकारी भेरी धाव के स्थान पर ध्म्म धोव से ज्यादा परिमित थे। फलस्वरूप वे किसी बाह्य आक्रमण का सामना न कर सके।"

आपका मत नितांत तर्क संगत लगता है कि–

राजाओ का सेना से कितना कम संपर्क था यह इस बात से सिद्ध होता है कि सेनापति पुष्य मित्र ने सेना के समक्ष है। विहत की हत्या कर डाला नीलकंठ शास्त्री ने उस सभी के मतो का खंडन करते हुए लिखा है कि–

अशोक की शांतिप्रियता में कट्टरता नहीं थी, वह मानवीय स्वभाव की जटिलता से अच्छी तरह और युद्धत्याग की नीति को सीमा के अंदर नियंत्रित रखा।

इसी तरह का प्रतिवाद करते हुए रोमित्ता पर भी लिखती है कि–

अशोक की शासनव्यवस्था की रूढ मुक्त प्रवृति उसके अहिसा के सिद्धान्त को हदय से अपनाने में निहित नही थी और नही उसकी अहिसा की नीति ने सेना को कायर बना दिया था। न ही उसने सेना भंग की थी और नही सेना का अनुशासन कम किया था। उसकी अहिसा ऐसी अवास्त विकतावादी नही था।

उसके अभिलेख इस बात के साक्षी है कि उसकी सैनिक शक्ति सुदृढ़ थी। 12 वे शिलालेख में अशोक सीमान्त व आटविट जातियो को स्वकर चेतावनी देते हुए

कहता है कि जो गलती किये है उन्हे सम्राट क्षमा किया जा सकता है परन्तु जो क्षम्य है। उन्ही को क्षमा किया जा सकता है।

यदि व अपराध करना नही छोडेगे तो उनकी हत्या करा दी जायेगी।

निष्कर्ष – ऐसा प्रतीत होता है कि – अशोक ने इसलिए शांतिवादी नीति का अनुसरण किया कि उसके साम्राज्य की बाहरी सीमायें पूर्णतया सुरक्षित और देश के भीतर भी शांति व्यवस्था विद्यमान थी। दूसरे यदि अशोक शांतिवाद नीति के स्थान पर सैनिक निरंकुशलवाद होता न और तब उसके आलोचक सैनिक वाद की आलोचना कर उसे ही साम्राज्य के हिटकर मुसोलिन आदि सैनिकवाद के उच्च पुरोहिता के विरूद्ध आरोपित किया जाता है।

इस प्रकार अशोक को किसी भी कीमत पर पतन का उत्तरदायी नही माना जा सकता। मौर्य सम्राज्य का पतन स्वाभाविक कारणों का परिणाम था जो किसी भी साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी होते हैं।

इस सम्बन्ध में मुखर्जी का कथन वस्तुतः सत्य प्रतीत होता है कि– यदि अशोक अपने पिता और पितामह की रक्त और लोकिनी का अनुसरण करता तो भी कभी न कभी मौर्य स्रामाज्य का पतन हुआ होता। परन्तु सश्य संसार के एक बड़े भाग पर भारतीय संस्कृति का जो नैतिक अधिपत्य कायम हुआ–जिसका मुख्य कारण अशोक हो या शताब्दियों तक उसकी ख्याति की स्मारक बना रहा और आज लगभग दो हजार से भी अधिक वर्षो की समाप्ति के बाद भी यह पूर्णतयः लुप्त नही हुआ।

————————————————